हारी हुई लड़ाई लड़ते हुए

ठाकुर प्रसाद सिंह

ठाकुर प्रसाद सिंह / प्रथम संस्करण 1986 / मूल्य 35 रुपय
प्रकाशक इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के 71, कृष्णनगर, दिल्ली 110051
मुद्रक कमल प्रिंटर्स, 9/5866 गांधीनगर, दिल्ली 110031

HARI HUI LARAI LARTE HUE
by Thakur Prasad Singh

Price Rs 35 00

भूमिका

— 8 /

अपने वर्तमान में चेतना सजग कवि के विकास क सोपानो म ही उसके वास्तविक सरोकारो चिंताओ को देखा जा सकता है। भौतिक फैलाव के बाद अपनी ऊर्ध्वोमुखी यात्रा म काल और उसके पद चिह्नो के मूर्त इतिहास की छवियो का रचता हुआ कवि जहा चिंताओ से घिर जाता है, वहाँ उसके भीतर एक गहरा विषाद भी बजता सुनायी पडता है और मनुष्य की जय यात्रा की लिपियो आह्लाद की किरणें भी छिटकाती है। इतिहास कभी अपनी पूर्णता म हाथ नही लगता। उसके खडित रूपो म काल की सत्ता बजती है। कवि इसस नये समाधान ढूढता, नय समाधान निकालता है। नय मिथकीय औजार गढता है। खडित इतिहास की वस्तु सत्ता को हर बार नय अभिप्राय स जोडता है। जीवन क अगले चरण की ओर सकेत करता है, जहा ध्वस्त प्रकाशवाही रथ का मात्र एक पहिया ही 'अजस्र सूय किरणें बिखराता हुआ नया प्रेरक बन जाता है। काल और इतिहास की वास्तविकता से जीवन की दुदम वास्तविकता को जोडकर ठाकुर भाई न अपनी कविताओ म रचा है। उन्होने हारी हुई लडाई लडत हुए" की चेतना को अपन समय सदभ मे उपलब्ध किया है, जो इतिहास बोध से गुणित हो गया है। तभी यह चेतावनी भी प्रकट हो सकी—

जो प्रतीक्षा स ऊब जाते हैं
वे समय के रथ को
रास्तो पर खाच लाते है (पृ० 20)

जीवन-अस्तित्वगत लडाई के वयक्तिक एव सामूहिक—दोनो छोरो की ओर इगित है इन कविताओ म। ठाकुर भाई क्योकि कविता के सामाजिक उत्तरदायित्व के विश्वासी हैं इसलिए यहाँ लडाई के रोमान मे जान वाली झूठी दिखावटी क्रातिकारिता, चमत्कारिक वचन विदग्धता और सपाट बयानो के विपरीत कविता को कलात्मक धरातल पर, ऐंद्रिक प्रमारो मे ले जाकर, आस्वाद के नये आयामो मे प्रस्तुत करते हैं। यो विचार-व्यग्य के सरोकार अधिकाश कविताओ म व्याप्त हैं परतु चिडियाघर', मेरे देश, 'मौसम के पन्ने' 'अस्फुट वातालाप म इनका समीकरण अधिक प्रहारक है।

तुलसी, कबीर, भारतेन्दु हरिश्चद्र का 'बहुत पुराना शहर' हो या 'पुराना घर' या पुरान लाग—ये मूल्य एव स्मृतियो के रूप म चेतन्य रूप

लेकर स्थित हैं। वाराणसी कवि के संस्कारों श्वासों में ही नहीं उसकी कविताओं में भी धड़क रही है।

एक और स्वर यहाँ मुखर है—मूल्यवान के, सार्थक के, छिनने का, व्यतीत होने का। इसमें नगरीकरण की प्रक्रिया के चलते अंधी हो चुकी गलियाँ (पृ० 37) के संदर्भ हों या अत्यंत व्यक्तिगत स्पर्श वाला मन—

विदा होने के लिए
तैयार होना, सोचता
हँसी के अंगार दकदक
फूट कर अवसाद फेंक उमड़ चलेंगे (पृ० 24)

या—

गीत वैसे ही हरे थे
गगन वैसे ही भरे थे
हमीं बीत गये। (पृ० 93)

एक स्मृति एवं मूल्य समृद्ध मानसिकता को जीते हुए कवि की कविताएँ हैं ये। जहाँ स्मृतियाँ—स्वप्न नहीं होते वहाँ कवि उन्हें रोपता है। यहाँ कुछ गीत गजलें भी संगृहीत हैं, जो पहले से परखी-पहचानी हुई हैं। इनके माध्यम से पुन: उपलब्ध है—

स्मृतियों के शीतल झोंकों में झुक कर काँप उठा मन'

ठाकुर भाई जी संगृहीत कविताओं का समवेत धरातल उन्हें देश-काल को अतिक्रमण करने लोकातरण रचने की क्षमताओं से सज्जित करता है, जहाँ—

आँखों में अंजन सा
अंधकार
नयी आँख देता है (पृ० 48)

—डॉ० बलदेव वंशी

हिंदी विभागाध्यक्ष
श्री अरविंद कॉलेज (सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय,
मालवीय नगर नई दिल्ली 110017

क्रम

कविताएँ

गीत

कविताएं

हमें मिलना था
ध्वस्त प्रकाशवाही रथ का
मात्र एक पहिया

रथचक्र और सूर्यबिम्ब

कोणार्क में कभी देखा था
ध्वस्त हो गये
विशाल सूर्य-मन्दिर का
अवशिष्ट एक पहिया।
विशाल शिखरों वाला
मन्दिर कभी उदयगिरि जैसा
रहा होगा।
प्रात पूर्व समुद्र से निकलने वाला
सूर्यबिम्ब
दमकता होगा उस पर
जवान आक्रोश जैसा
असहनीय, फिर भी प्रीतिकर,
फिर जल उठना होगा
आतशी शीशे पर केन्द्रित
सूर्य रश्मि में
जल उठने कपास सा
कोण सूर्य का
—कोणार्क।

आज वहाँ न मन्दिर है

न सूर्य प्रतिमा
न वह सूयविम्व ।
कैमरे मे लगे वल्व जैसा
एक निमिप भर जलकर
राख हो चुका है
इतिहास-क्षण ।

अब न रवि है
न रवि-छवि
मैं जानता था कि
हमे विलम्व हो गया है ।
थकान से भरा
लम्वा रास्ता पार करने के वाद कोणाक मे
हमे न सूय मिलेगा
न सूर्यविम्व
न उदयगिरि
न अस्ताचल
फिर भी हम वहा गये ।

हमारे हिस्से पडना था
पूरा सूयरथ भी नही
हमे मिलना था
ध्वम्त प्रकाशवाही रथ का
मात्र एक पहिया
हम खडे थे
पहिये की छाह मे
और देख रहे थे
पहिये से फूटती
अजस्र सूय किरणे ।

रास्ता

रास्ता नदी के किनारे तक
नंगे पाँव आता है,
फिर थिर जल में डुबकी लगाकर
उस पार निकल जाता है।
फैले चरागाहों के बीच
घास चरती गायों के बायें
कभी दायें होता
स्कूल से बाहर गोल बाँधकर
बैठे बच्चों की पीठ थपथपाता हुआ।
दूर जाते हुए
बाँसों के झुरमुटों में
सीटियाँ बजाता हुआ
पैर पटकता, हँसता
गाँवों में लहराकर घुसता है
पर किसी पेड़ की छाँह
या चौपाल का ठहाका
उसे रोक नहीं पाता।
रास्ता गाँव में जाते हुए भी
गाँव में नहीं जाता,
आखिर जोगियों का

गाव-घर से क्या नाता !
लोग रास्तो को चौराहो मे बाँधते है
घेरते हे छोटे-बडे घरो से,
दोनो ओर
फिर आराम करने के लिए,
जरा सी झपकी लेते है,
पर आँख खोलने पर देखते हैं
रास्ता उन्हे छल गया।
अभी यहा था
अभी वहाँ मे निकल गया।
सोचता रहा हूँ
मैं भी वनाऊँ घर किसी रास्ते पर
पर रास्ते का क्या ठिकाना
उसे तो न कही आना है
न कही जाना।
फिर भी मैं सोचता हूँ
कि जब मैं घर वनाऊँगा
उस पर रास्ते के लिए
रास्ता छोड दूगा।
रास्ता मुडे इसके पहले
अपने को ही मोड दूगा।
कुल मिलाकर
घर मेरा होगा रास्ता
यानी
रास्ता मेरा घर।

पक्तियो के बीच छूट गयी
जगह मे
बचा रह जाता है इतिहास का
काफी बडा हिस्सा
पढा जाने को।
निर्माणो के बाद भी
वहुत कुछ रह जाता है
गढा जाने को।
अकित तिथियो के बीच का
अतराल ढूढता हुआ
मेरे भीतर कोई है।
न गाया गया राग
सुनता हुआ—।
साझ हो जाने पर जब
पताकाएँ उतार ली जाती ह—
प्रतीक्षा मे खडी एक दूसरी दुनिया
पास सिमट आती है।
जब आदमी के पास
कोई नही होता,
इतिहास का दद
अकेले वही ढोता है।
दुनिया को समझने के लिए
भीड भरा मेला मजबूरी है।
पर अपने को समझने के लिए
आदमी का अकेला होना जरूरी है।

एक पुराने घर के खिलाफ

वादल वर्षा भरे दिन मे
जव देवता सोते रहते हैं,
तुम इस धरती पर आये।
जैसे प्रखर हवा के नशे मे
थककर सोयी माँ की पीठ पर
हथेलिया थपकाता
सोते से जागकर, मुसकराता वच्चा
अपनी लोरी खुद गाये।

जहाँ हवेली मे
इतिहास का धुँधलका हो
और वतमान की
वुझी हुई दीवालगीरें,
शीशो पर उलटी वनी हो
कम्पनी काल की तसवीरें
वूढे दरवानो और
शोख नौकरानियो की नोक-झोक
जहाँ चलती हो वे रोक टोक।
जहाँ ड्योढी के वाहर पैर रखना वर्जित
सारा इतिहास पुरानी कहानिया मे सचित

जहा आकाश कुल
एक गली जितना दीखे।
लडका जहा दूसरो की अँगुली पकडकर
चलना सीखे—।
एक बालिश्त के बच्चे के लिए
पाच-पाच हाथ के रखवाले हो—
आगे मशाल
पीछे बल्लम ठनकाने वाले हो—
गरजता पहरेदार—होशियार
ऐसे दहशत भरे माहौल मे
बचने का कुल एक रास्ता है—मेरे राजकुमार
कुल एक—
फक अपने को
सपने की झिलमिलाती सुरग में
बेहिचक फेंक।
विशाल हवेली मे
जहा बरामदे पर बरामदे हो
घर पर घर।
जहा भटकता है एक बच्चा
खोजता सपनो के हस के
टूटे-छूटे पर
और उठाता है अदश्य कविताएँ
जो बिखरी है उसके दाये बायें।

तुम्ही प्रणय गीत हो
तुम्ही बरसते बादल झमाझम
तुम्ही प्रिया हो, तुम्ही
अपने प्रियतम।
अपने ही दपण मे
अपने को देखते हुए
अपने अपरूप रूप पर

स्वयं ही निछावर होते हुए ।
अपने ही आँसुओं से
अपना ही मुख धोते हुए।
बेदर्द दुनिया में कदम रखते हो
अपनी कविताओं की दुनिया में
होकर आते हुए ।
एक बहुत पुराने शहर के
एक पुराने घर के खिलाफ
तुम्हारी कविताएँ देती हैं,
नयी होने की, बदल जाने की
ललक का हिसाब !!

तटस्थ

वे ठीक है,
क्योंकि वे निर्णायक ह।
ऐसी स्थिनि मे
वे स्वतन्न है हर स्वर को
कातर पुकार कहने के लिए।
हर भटकाव को हार कहने के
उनके निणय पर
म चाहे जो कुछ भी कहू
उनका कुछ नही बिगडता बनता।
क्याकि वे वकील अपन विदेशी दाशनिका के
देश से कुछ अधिक वडे सत्यो के लिए
द दिये गये है।
जिन मूल्यो के लिए व लडते ह
वे पराजय के अपमान से
खण्डित नही हाते।
व सही अर्थो मे आत्मजयी ह।
उन्हान मत्यु का रहस्य समझ लिया है
देश के लिए, या
प्रिया के लिए
व समान भाव से व्यथ हा गये है

मैं एक मूख कवि हूँ,
तटस्थता या पक्षधरता
मेरे लिए दोनो बेमानी है।
पर उन लोगो पर मुझे भी
रोना आता है जो
स्थितियो के बीच गुजरे बिना
परिस्थितियो पर विजय
पा लेना चाहते है।

स्थिति एकदम वैसी ही
नही है जैसी वे कहते है।
मुझे तो लगता है कि
जो कल व्यथ हो गये
वे आज चीजो को
नया अथ दे रहे है।
जो कही नही है
वे आज
सडको पर ह।
जो प्रतीक्षा से ऊब जाते हैं।
वे समय का रथ
रास्ता पर खीच लाते ह।

अनमना मन अनवना घर

कहाँ जाऊँ ?
किस नगर, किस द्वार, किस घर
कहाँ मागू छाह ?
कहाँ होगी सहारे की बाँह ?

इधर सोच रहा वनाऊँ घर
पर कहाँ, यह नही पाता सोच।
तीर पर इस नदी के या उस नदी के,
राह पर मन्दिरो की या
राजपथ पर, कहाँ ?
यहाँ या फिर वहाँ !
मोह उठता अजाने विस्मृत सिवानो का
आँख भर आती किसी अनवने घर
की छाँह के सुख से।
न भोगे जन्म की मधु याद से
रोमाच उठ आता।
किसी भी सुख से वडा सुख
भोगता मैं जी रहा हूँ—
वडा सुख—
हाँ वडा सुख—

घर वनाऊँ रहूँ इससे भी
वडा सुख,
अनमने मन का
अनबने घर का

विदा तुम्हे !

वहुत खोया सा किनारे पर अकेला
देखता हूँ, साथियो की तरल आँखो की दमकती सीप,
खुलती हँसी
और हाथो मे कसे से हाथ,
हलका कम्प,
प्यास अतर की झिझकती, स्वेद पीती !
ये किनारे के व्यवस्थित अटल प्रस्तर-खण्ड
मैं लहर सा, मथ रहा वस घूमता हूँ,
व्यथित मैं स्थिरता न पाता !
पैर के नीचे लहर ललकारती सी खीचती है
मुझे कोई वाहु पकड न पा सकेगी
मुझे कोई वर्जना न झुका सकेगी

कल जमी होगी गमकती गोष्ठी
कल हास गुजित
कल कथाओ के रुपहले सूत्र अनझिप
झिलमिलायेंगे खिलेंगे
घिर रही वरसात की झडियाँ
हँसी पर झेलने वाले मिलेंगे।
और जाडे की जमी सी रात का स्तर-भेद करते

हसी के अगार दन्दक
फूफ पर अवसाद फेक उमड चलेंगे।
चाय की लघु झील पर कुहरे धुएँ के
ओठ पाटल से झलक्कर दूर होगे
आज खाली चायघर मे उलझता सा
खडा आह्वानभरी मनुहार सुनता
जागता सा सो रहा हूँ।
विदा होने के लिए
तैयार होता, सोचता।

वोट का दिन

वोट का दिन
अतल का विश्वास शीशे सा करकता,
एक क्षण के लिए जीवन तोलता है
झपेटो मे कॉपती इस तुला पर धर।
यह उखडते पैर, कँपते प्राण का दिन
यह उमडते क्रोध विह्वल मान का दिन
वोट का दिन।

फाइलो के, लाल फीतो, कुर्सियो के,
कार, बूटो, पर्चियो, चपरास, वर्दी, घटियो के
स्टेज पर बिजली बुझाकर।
थके हारे लोग राह टटोलते है।

खीझकर जैसे किसी शिशु ने
मिटा डाले सभी हो अक रोकर,
स्लेट पर खडित शिराएँ
अक्षरो की तडपती है।

शून्य कुहरे से भरी वस्ती उनीदी झाँकती है,
राह लम्बी भर गयी है,

लाल पीली धोतियो की आड मे
दो नयन शकित, हाथ कपित
गोद मे वच्चा मचलता
एक कौतूहल दवाये दाँत मे सग अधर के
तुम जा रही हो।
कौन जाने, यह कौतूहल कहा किस पथ
पर तुम्हे ले खडा कर दे।
कौन सी मधु कल्पना मन मे वसाये
तुम रहस्यो का अजाना लोक पाने
जा रही हो,
उग रहा दिन
वोट का दिन।

विरस लम्बे थके जीवन को उदासी
ठीक ही है
एक दिन तो हटे कुहरा
क्षणिक ही पर गुलावी तो है
पीत मन के वृत्त पर
खिलती हँसी
उतरता कुतूहल
धमनियो मे ओज गूजा ठीक ही है,
पुतलियो मे मचलकर दो दुधारे
हो गये नगे, वहुत सुन्दर।
मुवारक मानो भरी यह लाज
मुबारक यह द्रोह की आवाज
मुवारख यह हसी यह
खिन खिन
वोट का दिन।

साँस खीचे खडी घन अमराइया
ध्वनि से गयी भर

बाँस के घेरे उलझनो से भरे है
पार्टियो की चीख,
कागज फडफडाते
अँधेरे से भरे घर मे लडखडाती
राह जनता खोजती है।
धूल की पर्तों भरी पेशानियो की
रेख गहरी हो गयी है,
घोर चिन्ता का गहन जल
गरगराता जहाँ बहता जा रहा है
आख के तट दूर होते जा रहे है,
गया चढ दिन
वोट का दिन।

बासती हवाओ का जगल

रात मैंने विचित्र स्वप्न देखा,
मैंने देखा कि मेरे सामने का सूना मैदान
एक जगल मे परिवर्तित हो गया है—
जमीन से आकाश तक फैले एक जगल मे।
लम्बी शाखे, लतरें, आकाश बेलें—
एक-दूसरे से ताने बाने की तरह बुनी—
जिनसे छनकर धूप नीचे आते-आते छाया मे हो जाती है।
जगल स्थिर नही है—अगरु के धुएँ सा जागर।
अभी मेरे दरवाजे खाली थे—अब भर गये।
खिडकिया लताओ से आच्छादित हो गयी।
रोशनदानो से लताएँ भीतर मुट्ठियाँ पसारने लगी।
अभी घर भी भर जायेगा—लो भर गया।
लताएँ रेंगती हुई हर कोने मे
जगह बनाती फैल रही हैं।
तसवीरो के पीछे, बुक शेल्फ पर,
टेबुल पर रेडियो के तारो पर
जहा कही भी देखता हूँ—
वही हैं शाखाएँ और टहनियाँ।

मैं धीरे-धीरे स्वय भी

घिर गया हूँ इस जाल मे ।
खो गया हू, हाथ-पाँव ढीलकर ।
तभी चढने लगा है एक नशा
पैरो से, बाहो से होता हुआ
हृदय की ओर—
एक शीतल मरीचिका
मुझे चादर की तरह लपेट लेती है ।
धीरे-धीरे मैं पानी की सतह पर तैरते
उस खाली वतन की तरह भर जाता हूँ,
जिसमे कितने ही छद हो—
फिर डूब जाता हूँ,
विनिमज्जित-तृप्त-आश्वस्त ।
इस डूबने मे सुख है—
ताजी वनस्पतियो के गध जल मे
डूबने जैसा ।

तद्रा के बीच वशी बजती सुनता हूँ,
नाटक का दूसरा अक शुरु होने को है,
सारा का सारा जगल
पानी पर गिरे तेल की तरह हिलता है—
फिर सतरगा हो जाता है ।
अगरबत्ती के धुए की गाँठो-सा
मेरा स्वप्न खुलता है, फैलता है ।
गध धीरे-धीरे पके फलो की
मादकता से भर जाती है ।
डालो पर घासले उभरते ह,
उनमे बच्चे ह, चहचहाते, बेचैन
हर कही घोसले घासले
दूर भी पास भी—
यहा तक कि टालस्टाय, शकर,
तुर्गनेव की तस्वीरो के पीछे भी ।

बच्चे चीख-चीखकर थके जा रहे हैं।
वहाँ
वहाँ गौरये हैं—उधर पुस्तकों के पीछे पिडकुले,
हवादानों में कबूतर।
फिर फूल फूल ही फूल।
कोने-कोने में फूल खिलते हैं,
लताओं ने बढ़ना बन्द करके
फूलना शुरू कर दिया है।
मेरे भीतर भी कुछ फूलता है, फलता है
और मेरे रोम-रोम को,
पकी गंध से भर देता है।
बेचैनी से करवट बदलता हूँ।
तभी स्वप्न टूट जाता है,
और जंगल अदृश्य हो जाता है।

लेकिन आवाजें नहीं जाती,
गंध ने भी अभी कमरा
खाली नहीं किया है।
घोसले भी वैसे ही हैं—
तस्वीरों के पीछे गौरैये,
किताबों के पीछे पिडकुले
और रोशनदानों पर कबूतर।
मेरे भीतर की ताजी गंध
और नयी धड़कन
सब जहाँ के तहाँ हैं।
जब सब हैं तब जंगल भी यहीं कहीं होगा
वह भला कहाँ चला जायेगा ?

एक गाय मेरी

कभी ऐसा भी हुआ था कि
चरिताथ हुई थी—
मिथक गाथाएँ
वेदा, जातको, महाभारत
दशकुमारचरिता
कथा सरित सागरा की।
स्वप्न जैसी लगती
कल्पनाएँ
भूमि पा गयी थी यथाथ की।
पैदल लडने के लिए
खडे राम तुलसी के
जीत गये थे रावण से
असहयाग समर मे।
विश्व भर मे विजय-रथ लिए
घूम आये
विजेता के अश्वमेध अश्व का
रोक लिया वढकर
किसाना ने वारदाली के।
कभी न डूबने वाला सूय
साम्राज्य का—

डूब गया छोटी-सी तलया म
चम्पारन के गाँव की।

तब जब बापू जीवित थे
मैं उनके पास गया था
अपनी पुस्तक लेकर
उन्हें समर्पित करने।
उन्होंने ग्रथ लेने से
इनकार कर दिया
और कहा—
"सो वष का हो जाऊँ
तब आना।"
मैं निराश सा आशा लिए लौट आया।
इस बीच म फूटे कलश सा
भरा और रीत गया।
तब समय से पहले पहुँचा था
अब लगता है
समय ही बीत गया।

विभाजन के वे दिन
जब कृष्ण द्वैपायन व्यास
ने दहकते आकाश मे
उडा दिये थे भोजपत्र पर लिखे
पन्न महाभारत के।
और भुजा उठाकर
आसू भरे कहा था—
'नहि कश्चित श्रृणोति मे'
नही कोई सुनता है।
व्यथ हो गया कृष्ण का सारा तप
द्रौपदी का सतीत्व अरक्षित पडा
पैरो पर दु शासन के।

तभी शुरू हुई फिर से
आत्मा की खोज की
दारुण यात्रा,
बछडो से बिछुडी
गायो के बीच भटकती
एक गाय मेरी थी।
मैं उसके पीछे न जाने
कब से चलता रहा।
पर न वह गाय
कामधेनु थी,
न मैं दिलीप
पाच सौ गावा,
हजार घरो
पचास रास्तो से होती
मेरी गाय
अब तक न जाने कितनी नदियाँ लाघ गयी है।
न उसे जल मिला,
न मुझे छाह
धनुष चढाये
दुखने लगी है
मेरी बाह।
न तो वह
गाय कामधेनु बन पाती है
न मैं दिलीप।
मैं उसे जल नही दे सकता,
क्योंकि इन्द्र मेरा अनुशासन नही मानता।
मैं पाताल भेद नही सकता।
मैं अर्जुन भी नही हूँ।
मैं केवल चल सकता हूँ,
अपनी उदास प्यासी
आत्मा के पीछे पीछे।

हजारों-लाखों के बीच
एक व्यक्ति भर
मैं हूँ।
अपने ही पीछे-पीछे चलता
रास्ते ढूँढता
गाँवों, घरों के बीच
अनबने रास्तों पर
अनमने मन से।
कितना मुश्किल है
बिना दिलीप हुए
इन्द्र से लड़ने की नियति झेलना
या बिना भगीरथ हुए
सगर के साठ हजार पुत्रों
की भस्मी से भरा कलश
सिर पर रखे
रास्ते-रास्ते
गंगाजल खोजना।

पा जाने का भय

हर मोड निगाहा को
जगल मे छोड आता है,
हर गध भटका देती है
गाव के सिवानो म
हर आवाज वहुत पास से उठती है
पर गूजती हुई दूर दूर
चली जाती है
और खो जाती है

मै कही नही जाता
मै इस चौरास्ते पर खडा हूँ
खडा रह जाता हूँ
भागते-दौडते इस शहर के
चौरास्ते पर,
'ट्रैफिक' सकेत की लाल-पीली आख
मिचमिचाती रहती है।
ये केवल मुझे ही वर्जित करती हैं ?
या तुमको भी ?
या सवको ?

आखिर भय किस बात का ?
भटकावदार पगडंडियां खो देने का ?
शायद वह भय न हो,
शायद हो ही ?
पर पगडंडियां खो देने के
भय से भी बड़ा
एक भय है
राजपथ पा जाने का भय।

न जाने कब से

छोडता हूँ, इस शहर का
इस आदिम शहर को,
इस अतीत हो गये शहर को ।
इसे जोड सकू वतमान से
यह अब सभव नही रहा ।
इसकी गलिया, राजपथ इसके
जगमगाती नयी बसी बस्तिया
इसमे रहने वाले लोग
धीरे धीरे बरसते शिलाखडो, लावा
पृथ्वी के खुले जबडे से पिघलती बहती राल से ढँककर
अतीत हो गये हैं ।
यह सब पिछले कितने ही वर्षो से हो रहा है ।
अब तो इसकी लगभग
सभी गलियाँ अधी हो चुकी है ।
सडको पर चलने वाले लोग
दौडने वाली सवारियाँ
जहा वर्षो पहले थे,
वही जमकर फासिल हो गये हैं ।
रोज एक जैसा गज,
एक जैसा चौक,

एक जैसा गुम्बदो पर
फटे शामियाने सा आसमान।
वैरोमीटर की गली मे, कैद पारे सा—
घटता-बढता दिनमान।
रामरूप, श्री नारायण, कमला
विमला, सरला या सुमित्रा
सभी नाममात्र के लिए
बस नाम हैं, केवल नाम।
बीस वरस पहले सरोज जैसे
मकडे की कटी टाग सा हिलते थे
आज भी हिलते है।
दुर्गा के दातो मे
दस वर्ष पहले फसी हँसी
आज इतने दिन बाद भी
जहाँ की तहा फँसी है।
बाबू हाथ जोडे खडे है,
अधिकारी कुर्सियो पर
बैठे-बैठे जैसे के तैसे, अकडे पडे ह।
बडे मैदान मे हजारो की भीड इकट्ठी है।
भीड क्या खान से खोदकर
निकाली गयी धातु मिश्रित
काली कुरूप मिट्टी।
मच पर खडा जादूगर
न जाने कब से
उससे लोहा बनाने की दुहाई दे रहा है।
बडा शोर है, पर विचित्र बात है
मुझे कुछ भी नही सुनाई दे रहा है।

शीशे की दीवारो का नगर

शीशे मे रखे शो-पीस
जैसे—
षड्यत्र, दुर्भावनाएँ, दुरभिसधियाँ
हलकी पारदर्शी मुसकराहट के पीछे।
शीशे की पारदर्शी आडो का
खास खयाल रखना होता है।
इस शहर मे बडी बातो का
उतना महत्व नही है।
वे टूट सकती है, वे टूटे,
पर इन जल्दी टूटने वाली चीजो का
खास महत्व होता है।
मुसकराकर मिलो,
शीशे पर लाचारी से,
क्रोध से, घृणा से, हाथ फेरो,
छोडो और आगे बढ जाओ!
अभी कितने ही शो केस हैं,
अभी कितनी ही पारदर्शी दीवारे है।
गलिया, चौराहे, गलियारे, दरवाजे
शीशे मढे हैं।
शीशे ही शीशे,
तुम्हारे और उनके बीच,

उनके, उनके और उनके बीच,
सबके बीच।
सीमा का खयाल रखो।
यानी यह खेल चलता रहने दो।
मित्र मिलते हैं—
काफी हाउस का शीशे का दरवाजा
हर क्षण मित्र उलीचता है—
खाली समय मे अजगर की जीभ सा
लपलपाता हिलता रहता है
भूखा—मित्र भूखा।
बाजार मे अब चीजे
प्लास्टिक की खोलो मे मिलने लगी है,
कहकहे भी,
रास्ते चलते मित्र भी।
हाथो पर पारदर्शी दस्ताने है
कभी आलिंगन मे आये भी
तो शीशे प्लास्टिक की पोशाके
बीच मे दबकर करकती है।
इस प्रकार सभी सुरक्षित है।
यह दूसरी बात है कि चुम्बन
जगली गुलाब ऐसे
एकदम लाल न हो
और भूख आदिम न रह जाय।

व्यतिक्रम

व्यतिक्रम अपने चरम पर पहुच गया है ।
प्रत्यक्ष आचरण अब स्वप्न जैसे तर्कातीत हो गये है ।
और मेरे स्वप्नो मे अब तर्क का प्रवेश होने लगा है ।
पहले मैं तुम्हे साँझ के झुटपुटे मे सडक पर जाते देखता था
फिर उसी रात स्वप्न मे हाथियो के झुण्ड मे देखता था ।
अब तुम केवल स्वप्न मे दीखती हो,
हाथी केवल सडको पर शहतीरे खीचते
अब भीड सडको पर आसानी से वह सब कर लेती है
जो कभी स्वप्नो मे भी सम्भव नही था ।
चौराहो की शात पेडो की छाया
और सितार सरोद जैसी बजती सडके
अब मेरे स्वप्नो मे प्रवेश कर गयी है ।

कृष्णसार

क्वार की गहन धूप मे स्वण मृग भी
सुना है काले हो जाते हैं।
मैं भी इधर तपा हूँ
गहरी आंच ने पर
मुझे स्वर्ण नही बनाया
क्वार से भी खरतर इस ताप मे झुलसकर
स्वण से मैं कृष्णसार हो गया।
काला हो गया पर मृग नही बना
कीलित, दिशाहीन, उलझे इन पैरो का क्या करूँ।

विश्वास

रहा सहा विश्वास भी ढह गया
बीतते दिनो के साथ सब कुछ चला गया
शोर शराबे के बीच
अब केवल मैं हूँ,
अकेला केवल मैं।

अब किस प्राप्ति के लिए रुका जाय ?
निर्मोही मेरे मन
अब शिकायत बन्द करो।
इससे कुछ होने का नही।
इससे तुम्हारी निज की
आत्मविश्वास विहीनता ही झलकती है।
कुछ नही है फिर भी
गरदन तो सीधी रखी जा सकती है,
सब कुछ छोडकर तुम्हारी याद
बचायी जा सकती है।
इस याद मे तुम्हारा होना जरूरी नही
यह केवल याद है, आकांक्षा नही।
मैं जाता हूँ
बिना कोई निशान छोडे।

लाखो लोगो की तरह
मेरे भीतर अमर होने की आकाक्षा
कभी भी बलवती नही थी,
मैं कही आकाशचारी न हो जाऊ
इस भय से लोगो ने
मेरे रहे सहे पख भी नोच डाले
सिर उठाने के सारे रास्ते
बन्द कर दिये।
मैं अब अपने अस्तित्व से ही
लज्जित हूँ।
यह लज्जा मेरी अपनी है
इसे पीढियो के हाथ सौपने का क्या प्रयोजन।

मित्र महारथी

मित्र महारथियो ने हँसी-हँसी मे मुझे घेर लिया।
अस्त्र-शस्त्र यो ही मेरे पास कम थे।
मैं अस्त्र से मरूँगा भी नही।
शत्रु मुझे ऐसे नही मार पायेंगे
अजात शत्रु मुझको।
इसलिए मित्रवेशी महारथियो ने
मारा मुझे
अस्त्र से नही—
विश्वास से।
चक्रव्यूह के दरवाजे पर
जयद्रथ भीतर आने को चीखता रह गया
मेरी रक्षा के लिए।
पर वहाँ भीम का पहरा कड़ा था
और वयोवृद्ध भाई का
हाथ उसकी पीठ पर पड़ा था।

अब मैं नही हूँ।
मेरा शव कभी का हटाया जा चुका है।
मित्र महारथी निश्चिंत होकर
जहाँ खड़े थे, वही बैठ गये है,
पहले जहाँ मैं था अब काफी के प्याले है।

विराट की सभा मे युद्ध पर विचार हो रहा होगा
पर उससे मुझे क्या ?
वृहन्नला बनने की मेरी अवधि
इस बार बहुत लम्बी हो गयी है ।
इस बीच कौरव आये भी
विजयी होकर वे चले भी गये ।
वे फिर आयेगे
घाटिया तुमुल शस्त्र-रव से गूजेगी
धीरे-धीरे रो-धोकर चुप हो जायेंगी,
मौत के सन्नाटे मे
तब भी सिसकेगा
लेकिन खुलकर रो न पायेगा
शमी की डाल पर
मृतक की खाल मे लिपटा, छिपा गाडीव
और अक्षय तूणीर ।

लोकातरण

यह राजपथ—
इधर इस पर मेरा आना-जाना बढ गया है
यह एक अलग रास्ता है
मात्र कुछ दूर तक धरती पर
फिर आकाश पर
फिर कही नही !

इस छायाभ रास्ते पर दोना ओर
गहरे शेड है—
सेंट मेरी, क्लब, गाल्फ कोट, कोठियाँ।
बीच मे तैरती कारें, नायलन, टेरेलीन
बाब्ड हेयर, हँसी का टेक्स्चर—
छायाओ के ताने मे बाने सी
बार-बार बुनी जाती लकीरें—
सब मिलकर एक विशाल जाल बुनता जा रहा है।
जाल-लचकीला
झटका देने पर खुशी से फैलता,
चूकने पर बाँध लेता—गहन आलिगन मे।

मैं पदातिक,
इस जाल म मक्खी सा

उलझ गया हूँ।
इतना प्रकाश, इतनी
इतना ड्रेस रिहसल
सब है पर जैसे निर्वा
किये जाने की गध मे
आखिर क्या है जो
निष्कासित है?
कौन है?

रात बारह बजे
इस रास्ते से पैर घसीटता
तभी कच्चे गले की,
दूध सी गीत गध का झोका
मुझे जिला जाता है।
कुचले फन सा आहत—
एक स्वप्न जगता है,
खडा होता है, झूमता है।
आँखो मे अजन सा—
अधकार,
नयी आँख देता है।
मडप से नीचे
गहरे नाले मे पुल की छाया मे
एक पुरानी मजार पर दिये ज
भीड के बीच मे कच्चा शिशु
और नये पत्ते सा चिकनाया गा।

घुप्प अँधेरा, काली आकृतिया
चेहरे पर पिघलकर बहती
तैलावत रोशनी।
इतने सारे लोग कहाँ से आ गय
क्या बाँबियो से रेंगकर बाहर

जाता हू, दखता हू ।
डरते-डरते झाँकता हूँ—
डरता हूँ कि कही मेरे
आने से ये चौकन्ने न हो जाँय
वेश वदलकर मुझे मुक्त करने के लिए आये
ये वनजारे कही वैसे ही न लौट जाँय ।
मुझे विना मुक्ति दिये ही ।

रेलिंग पर मुझे तन्द्रा सी घेर लेती है,
स्वप्नाविष्ट सा मै जसे सो जाता हूँ,
सडक पर खडे-खडे ही,
नीचे उतर जाता हू
और देखते-देखते
लोकान्तरित हो जाता हूँ ।

उलझ गया हू ।
इतना प्रकाश, इतनी भाग-दौड
इतना ड्रेस-रिहसल ?
सब है पर जैसे निष्कासित
किये जाने की गध मे डूबा ।
आखिर क्या है जो
निष्कासित है ?
कौन है ?

रात बारह बजे
इस रास्ते से पैर घसीटता लौटता हू —
तभी कच्चे गले की,
दूध सी गीत गध का झोका
मुझे जिला जाता है ।
कुचले फन सा आहत—
एक स्वप्न जगता है,
खडा होता है, घूमता है ।
आखो मे अजन सा—
अधकार,
नयी आख देता है ।
सडक से नीचे
गहरे नाले मे पुल की छाया मे—
एक पुरानी मजार पर दिये जल रहे है ।
भीड के बीच मे कच्चा शिशु-कठ
और नये पत्ते सा चिकनाया गीत ।

घुप्प अँधेरा, काली आकृतियो के
चेहरे पर पिघलकर बहती
सलावत रोशनी ।
इतने सारे लोग कहाँ से आ गये ?
क्या बाँबियो से रेंगकर बाहर निकले ?

जाता हू, दखता हू ।
डरते-डरते झाँकता हूँ—
डरता हूँ कि कही मेरे
आने से ये चौकन्ने न हो जाय
वेश बदलकर मुझे मुक्त करने के लिए आये
ये वनजारे कही वैसे ही न लौट जाय ।
मुझे विना मुक्ति दिये ही ।

रेलिंग पर मुझे तन्द्रा सी घेर लेती है,
स्वप्नाविष्ट सा मैं जसे सो जाता हूँ,
सडक पर खडे-खडे ही,
नीचे उतर जाता हू
और देखते-दखते
लोकान्तरित हो जाता हूँ ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

उस पतली गली से होकर
कहीं भी जाया जा सकता है।
एक ओर गंगा हैं—दूसरी ओर रूप का दमकता बाजार
यदि कोई गंगा की ओर जायेगा
तो उसे बाजार छोड़ना होगा।
जो बाजार जायेगा
उसे गंगा नहीं मिलेंगी।
पर इस गली में
एक ऐसा आदमी भी रहता था
जो अपनी हवेली से निकलकर
गंगा और रूप के बाजार की ओर
एक साथ जाता था।
उसके पहले एक और आदमी था
जो एक साथ ही
गृहस्थ भी था, साधु भी।
एक और जिसने अपनी
हर यात्रा को परिक्रमा
और हर श्रद्धावनत क्षण को
मंदिर बना दिया था।

यह सुनने म शायद अच्छा लगे
पर इसे जीवन मे उतारना
कलेजे मे ठडी तलवार उतारने जैसा कठिन है।

यह एक ऐसा जुआ है—
जिसमे अस्तित्व तक की
वाजी लगानी पडती है
और बिना शिकायत के हार जाना होता है।
यह एक ऐसा योग है
जिसे भोग के बीच पाना होता है।
जीते जी अपने को रौंदते हुए
इस पार से उस पार जाना होता है।

यह शहर आपके लिए
आरामगाह हो सकता है।
पर जो जूझने के लिए जन्मते है
उन्हे युद्ध खोजने के लिए
कुरुक्षेत्र जाने की कोई आवश्यकता नही।
यहाँ का हर दिन एक चुनौती हे।
और हर गली एक कुरुक्षेत्र।
ऐसा न होता तो तुलसी को
वार-बार बिखरना न होता प्रभु के चरणो मे
न कबीर को कहना पडता
'जो कबिरा काशी मर तो रामहि कौन निहोरा'
और न लिखना पडता भारतेन्दु को—
"कहेगे सबै नैनन नीर भरि-भरि
प्यारे हरिचन्द की कहानी रह जायगी।"

महाभारत मे सब
कोई न कोई पक्ष लेते हैं।
केवल एक कृष्ण है जो दोनो ओर जूझते हैं।

वे अपना शरीर जिसे देते है
उसे अपना मन नही देते
फिर भी वे किसी को मारते नही
मरते केवल वे है।
बार-बार अपने ही हाथो
अपनी ही चोट से।
भारतेन्दु भी एक ऐसे ही महाभारत के कृष्ण थे—
उनका शरीर अभिजात के साथ था
पर मन नितान्त वचितो के साथ।
सेठ फतेहचन्द की कोठी
और कजली लावनीबाजो के खेमे म
एक साथ रहना आसान नही होता।
यह कोई बाजीगरी भी नही है
यह अपने ही हाथो से
अपने को काट-काट कर देना है।
यह दधीचि का काय है।
इसे साधारण लोग नही कर सकते
इस दान यज्ञ के अत मे
और कुछ नही बचता—बस
बचता है कवल
आने वाली पीढिया के लिए, अस्थिया का
एक अमोघ वज्र।

इतिहास के रोमाच मे जीना अच्छा लगता है
लेकिन उन्हे जो तटस्थ तमाशबीन है,
जो इतिहास को कामसूत्र की कलाओ का
हिस्सा मानते है।
वतमान भी कम आनन्ददायक नही होता
आप बिना किसी चिन्ता के
उसमे रह सकते हैं।
वसे ही जैसे किसी वातानुकूलित रस्त्रा मे

काफी का प्याला सामने रखे
प्रिया की आँखो मे आँखें डाले ।
दिक्कत तब होती है
जब आप अपने वर्तमान पर से
इतिहास के रथ के चक्र को
गुजरने देते है ।
वतमान मे रहते हुए इतिहास का होना
एक बडा महँगा सौदा है ।
सत्य हरिश्चन्द्र नाटक लिख लेना आसान है
उसे ददरी के मेले मे खेलने मे भी
कोई दिक्कत नही है ।
खुद को सत्य हरिश्चन्द्र की भूमिका मे उतारना
मगर इस दुनिया को नाटक का मच मानकर
एक खतरनाक तमाशा है ।
इसमें आपको
तिल-तिल करके बिकना पड सकता है,
हो सकता है कभी श्मशान मे
घोर अँधेरी रात मे खडा भी होना पडे ।
ऐसा भी हो सकता है कि
वहाँ आपका अत्यन्त प्रिय
आपसे आँखो मे आँसू भरकर
एक सुविधा मागे—
और आप अनर्पित दीपक की तरह
खडे ताकते रह जाँय
और उसे कुछ भी न दे सके ।

भारतेन्दु के साथ ऐसी ही दिक्कत थी ।
वे सभवत रोमाच के लिए ही
इतिहास की ओर गये थे
फिर वे उसके हो गये
और वतमान मे खडे खडे

खुली हथेली और तुलसीगंध

वाराणसी, मेरे लिए
एक सुलझी हुई पहेली है,
वह मेरे लिए हथेली पर रखा
बदरीफल नही
एक पूरी की पूरी
खुली हुई हथेली है।

गगा इस हथेली की
जीवन रेखा है,
इस छोर से उस छोर तक
अविहत, निर्बाध, निरन्तर।
जीवन-रेखा के समानान्तर
चलती है,
इस नगर की हृदय-रेखा
ऋषि-पत्तन के धमेख-स्तूप
के चरण प्रान्त से चलकर
हनुमान फाटक, प्रह्लाद घाट,
पचगगा, बिन्दुमाधव, काशी विश्वेश्वर
केदार घाट, शिवाला—
फिर तुलसी घाट होती

यह रेखा लका पर पचक्रोशी की परिक्रमा
छू लेती है।
नगर मे पश्चिम की ओर से
उसे एक ओर से काटती
चली जाती हे गगा के उस पार
नगर की भाग्य रेखा।
यह रेखा इस नगर को देश से
तथा देश को इस नगर से जोडती है।
मस्तिष्क रेखा
पूरब मे पश्चिम तक फैली
बाट देती है
पूरी हथेली को दो भागो मे
केदार खण्ड — काशी खण्ड
जो भी नाम रख ले।
हथेली पर और भी कितनी ही
रेखाएँ है,
नीली काली
पिछली रेखाओ को काटती पीटती,
ये काल के हाथ के
बेत के निशान हैं।
नित्य प्रात काल उठकर
मैं अपनी हथेली मे झाँकता हूँ
और नमस्कार करता हूँ
अपने इस नगर को
फिर दोनो हथेलिया जोडकर
अपना चेहरा उसमे डुबा देता हूँ।
धीरे-धीरे जागती है
तुलसी की भीनी गध की पहचान
यह तुलसी गध मुझे
तुलसी से पहिले मिली थी।
रचनाकार तुलसी से

मेरा परिचय बाद मे हुआ
इसके पहिले एक और तुलसी
मुझसे मिले थे चलते—
काशी की हृदय-रेखा के साथ-साथ।
असाधारण लेखक तो वे
बाद मे लगे।
उस समय मेरे लिए
वे मेरे असाधारण नगर के
एक साधारण नागरिक भर थे।
बचपन मे
परदादी की उँगली पकडकर
पचगगा घाट से नहाकर लौटते
एक गली की विशाल हवेली के
एक रोशनदान मे
फूल-जल-अक्षत फेकती
परदादी के कन्धे पर चढकर
मैंने गोबर लिपी
उस अँधेरी कोठरी को
देर तक देखा था
जहाँ बैठकर कभी
तुलसी ने विनयपत्रिका लिखी थी।
थोडा बडा होने पर
एक दिन सारनाथ से लौटते हुए
मैंने वह रास्ता पकडा था
जिससे होकर भगवान बुद्ध
कभी भिक्षा मागने जाते थे।
जिससे कभी कबीर
नगर छोडकर बाहर चले गये थे,
जिसमे होकर
तुलसी ने नगर मे प्रवेश किया था।
इस हृदय-रेखा पर

एक छोटा सुनसान मन्दिर था,
उपेक्षित, सूने बरामदा
तथा दीये भर के आगन वाले
उस हनुमान-मन्दिर मे
कभी तुलसी ने सिर छिपाया था
वही बैठकर अरण्य काण्ड लिखा था।
लका मे अकेले विभीषण के
घर जैसा
दातो मे अकेली जीभ जैसा
वह मन्दिर आज भी
उतना ही अकेला है।
वही मैंने
इमली की सूखी पत्तियो से भरे
आगन मे बैठकर
वनवेशधारी
राम-सीता-लक्ष्मण की
मूर्तियो के नीचे
जमीन पर बिछे कुशासन को
तुलसी का मानकर माथा टेका था।
आगे चलकर
रास्ते के साथ उम्र लाघता
एक दिन वृद्धकाल कूप पहुँचा।
वहा द्वार विहीन, सीलन भरे
कमरो मे वही तुलसिका-गन्ध
फिर मिली थी
विश्वविद्यालय का रास्ता छोडकर
सूने तुलसी घाट की सीढियो पर
कितनी बार बैठा हूँ,
उसी गन्ध के लालच मे।
बाद मे वर्षो अधमूर्छित सा
पीछा करता रहा उसी गन्ध का।

दशाधिक तुलसी स्थापित
हनुमान के मन्दिरो के आसपास
विश्वेश्वर के मन्दिर के रास्ते
ज्ञानवापी, नगवा, प्रह्लाद घाट, लका—अस्सी—
न जाने कहाँ-कहा रहा भटकता।
देश देश मे घूमता रहा
तपता पेट की आग मे
पर जी की जलन मिटाने
बराबर भाग आता रहा घर—यानी काशी।
जहाँ क्वार मे सारी रेखाओ को
सँवारती एक और रेखा
उभर आती थी—
तुलसी की बनायी—राम-रेखा।
इस रेखा का एक छोर
नगवा को छूता था
जहा हृदय-रेखा का दक्षिण छोर था
और दूसरा छोर
भाग्य-रेखा को वरुणा के किनारे छूता था।
यह तुलसी की कम-रेखा थी।
क्वार मे, बरसात बीतने पर
फूलने वाले फूलो की गन्ध से
भरे रहते थे पडाव
रामलीला के,
पर उनमे वनतुलसी की गन्ध
खोज लेने मे मुझे
कभी देर नही लगी।
मशालो के तैलान्त प्रकाश मे
मृगछाला पर बैठे रामचन्द्र से
साथ ली गयी मित्रता के प्रमाण मे
पायी गयी
खास उनके गले की

तुलसी की माला की
एक मुट्ठी तुलसी की गन्ध ।
आज भी
अजुलि वाधते ही
गन्ध का सरोवर वन जाती है ।
केहि गिनती महँ गिनती
जस वन घास
राम जपत भये तुलसो
तुलसीदास ।

चिडियाघर

चिडियाघर देखकर लौट जाना
आनन्ददायक हो सकता है।
पर वहा रहने के लिए जाना—
क्या बताऊँ, कैसा लगता है ?

पहले मैं अक्सर वहाँ जाता था
वहाँ मैं शेरो को
अदभुत गाम्भीय से मण्डित देखता था,
और बन्दरो को
बुरी तरह खिलवाडी।
गिरनार का सिह, कामुक
अपनी प्रिया की गोद मे
समझौते की शर्ते तय करता रहता
चीता बराबर पतरे बदलता, चुस्ती से।
भालू मुँह बाये, जीभ हिलाता
और उसकी बगल मे चिम्पेंजी
अपने वशजो से दो दो हाथ
करने के लिए लालायित।
हाथी झूमता
मूर्तिमान सुख जैसा।

भालू निश्चिन्त
गैंडे अप्रभावित
कुदकते हिरन,
सिर पर उगी समस्याओ के जगल उठाये
चिन्तातुर वारहसिंघे
और वाहर-भीतर को अपनी लम्बी गरदन से जोडते
शुतुरमुग।
लम्बी टागो वाले हवासिल
तालाव को चोचा के स्केल से
बार बार नापते अन्दाज लेते।
पैलिकन हर कदम पर
भारी चोचो की खडताल बजाता
'हरे कृष्ण हरे रामा' कल्ट के
नवदीक्षित विदेशी-भक्तो जैसा
और दूसरी मजिल की खिडकी से
अपनी पूछ का अगवस्त्रम कधे पर डाले
झाकता पडा।
जालियो से ढँके
तालाव के छिछले जल मे
खडे पछी
अपनी आवाजो के लहरियो से भरे
ताल मे पख फुलाकर नहाते,
आलाप लेते।
साप अपनी गुजलको मे
अलसाये सोये विष्णु जैसे,
और मछलियाँ प्रश्नो की तरह
वरावर विचलित,
वेचन।
पर यह सब पहले की यादें है,
जब मैं वहा जाता था
और सुखी होकर लौटता था।

अब मैं चिडियाघर का स्थायी निवासी हू ,
और मेरी दुनिया
उसी के बीच सिमट आयी है ।
अब लगता है
जो पहले देखा था—
वह सुख नही
सुख का मृगजल था ।
सुबह घूमने के लिए आये
गाव वालो की रोटियो,
चने, सत्तू और फला के लिए
पूरे चिडियाघर की निश्चिन्तता
टूट जाती है,
और तो और
सिह तक जगले के पास आकर
अपनी खीझभरी शालीनता
प्रदशन के लिए
बाजार मे रख देता है ।
पूरे चिडियाघर को इस तरह
लोहे के जगलो से अपने नथने रगडते देखकर
जी उदास हो जाता है ।
एक मूगफली के लिए
एक आदमी का सिर पकडने इतना
मुंह फाडता है भालू
किले सा सुरक्षित गेडा
पुल की दीवार पर
थूथन घिसता है—
एक केले के लिए ।

यदि यही सब देखना था
तो बाहर ही क्या बुरा था ?
थूथन रगडते या खीझभरी

शालीनता संभालते, विाते
लोग वही या कम थे ?
फिर बाहर लोहे के जगले ता नहीं थे,
या थे भी तो
कम से कम दीखते तो नहीं थे।
धीरे-धीरे मेरे ऊपर
अजायबघर सवार होता जा रहा है।
मेरी चाल मे लँगडाते
चीते की चाल समा गयी है
और चेहरे पर
झलकने लग गयी है
शेर की खीझभरी शालीनता।
डर है कि कही एक दिन
मैं किसी के पैर पर
थूथन न रगडने लगूँ,
केवल एक केले के लिए।

मेरे देश

देश, मेरे देश, मेरे देश !
रास्तों पर टँगे खडित दर्पणा मे
खण्ड, शत-शत खण्ड फिर भी
एक मेरे देश
मेरे देश !
हर गली, हर गाँव, हर घर
तुम्हे देता अश अपना !
और तुमसे ग्रहण करता
पूणता का एक सपना,
एक नव परिवेश
मेरे देश !
टूटकर शत-खण्ड मे भी
जुटे है ये लोग
एक तारे पर टिकाये आँख
इतने लोग
भटक्ते विश्वास के जलयान पर
है फहरते आवेश से आदेश
मेरे देश !
दिग तो मे गूजते सदेश
तेरे देवता

पर्वतो मे गरजते सदेश
तेरे देवता
हवाओ मे लरजते सदेश
तेरे देवता
सागरो मे उफनते सदेश
तेरे देवता
मदरसो मे गजते ही घटियाँ
रूप धरते एक नन्हे गीत का
स्कूल से लौटते बच्चे की
किताबो के कवर पर
अनसधे हाथो बनी तसवीर
एटलासो मे छपे नक्शो की जगह
है तुम्हारे कही अधिक समीप
नये बच्चो के गले मे
तुम लपेट रहे दुपट्टो सी नयी राह
पहाडो की ।
पनबिजलियो की फिरहरा हाथ मे
देते उन्हे ।
सीटियाँ तीखी नये कल-कारखानो की
गोद मे लेकर जिन्हे हम
कल जिन्हे बहला सके हम
स्वप्न मे नहला सके हम ।
और ठोस यथार्थ के हाथो
जिन्हे सहला सकें हम
सके दिखला जिन्हे नये प्रदेश
मेरे देश ।
टूटने के लिए रक्षित अगम
व्यूहो मे
बिखरते टूटते शत-शत
स्वर समूहो मे
परस्पर स्वर एक भावो का

सके जो जूझ भय से
दो उन्हे ऐसे नये स्पन्दन
नये सदेश
मेरे देश !
वहुत भटकावो भरे पथ पर
हमे चाहिए ऐसा वोध
सके जो सब छल-दुरावो वीच
खोया ओज—रेखा खोज—
एक रेखा दौडती हर राह
हर पगवाट होती, जल-थलो मे
सागरो, गिरि-गह्वरो, नदियो भरे
घन जगलो मे
द्वार से मेरे, सिवाने से तुम्हारे
गली से, रास्ते से
कारखानो से, दुकानो से
यहाँ से, फिर वहा से
मेज पर से, कलम से
छेनी, वसूलो से, हथौडो से
हल, चराई, खेत
डाभर भरे—प्यारे रास्तो से
हर जुवानी, होठ से, मस्तिष्क से
हर गोष्ठी से, हर सभा से
प्रतिज्ञा-शपथो, सदन
हसियो भरे चौरास्ते से
मौन नीचे सिर किये
सोते हुए चुगी घरो से
स्कूल से, हर क्लास से, हर सीट से
हर बोर्ड से, हर खेल घर से
गुजरती जा एक लक्ष्मण रेखा
उसको सकू मैं भी देख
मेरे देश !

मौसम के पन्ने

ठीक फागुन के पहले दिन
मेरी कालोनी को नगर से जोडने वाली सडक के
सारे पेड काट डाले गये ।

चुनावो के दौरे शुरू होने को हैं
सडकें इस नये महाभारत के लिए
सन्न हो रही है।
बिजली के, टेलीफोन के खम्भे
बीस कदम पीछे हटकर
बचा सकते है अपना अस्तित्व
पर वृक्ष, जहा खडे थे
वही शहीद हो गये।
उनकी यही नियति थी।
मेरे लिए यह सडक तब
एक कैलेडर जैसी थी,
किनारे के पेड
मौसमो के पन्नो जैसे
हमेशा नये रग बदलते
सूचनाएँ देते ।
वृक्षो के साथ ही

वसंत भी चला गया।
बँगले के भीतर
घिसे रिकार्ड पर चौताल के बोल
पता नहीं किसने दिया
गलती से रेडियोग्राम खोल।

बीतते जा रहे वर्ष

कल एक वर्ष और बीत जायेगा,
एक और करवट बदलकर,
मैं दर्द के एक नये दायरे में प्रवेश करूँगा,
और देखते-देखते पूरे पचास वर्ष का हो जाऊँगा।
शतम जीवेन् की साध्यता यदि है तो आधी उम्र मैं ऐसे ही जी
गया।

आज तक पर्वत के इस पार था
कल उछलकर उस पार हो जाऊँगा
उछाल दिया जाऊँगा सुबह की हवा में—सिक्के की तरह
अब तक सिक्के का एक पहलू था,
चेहरे वाला पहलू।
कल से हो गया सिक्के का दूसरा पहलू
जिस पर चेहरे की कीमत लिखी होगी।
इस बीच आश्वासनों की प्राकृतिक चिकित्सा से
बार बार विश्वास टूटता है
पर चीर-फाड़ के भय से
हर बार भागकर फिर वहीं लौट जाता हूँ,
आश्वासनों के चरणों पर माथा टेककर
दुर्गा सप्तशती के श्लोक दुहराता हूँ।

कोई नही सुनता—यह जानते हुए भी
एक ही दरवाजे पर खडा खडा
जो वहाँ नही है
उसे बार-बार जोर-जोर से पुकारता हू।
शुभ चिन्तको के घर आने पर
अपना दु ख बार-बार रस लेकर सुनाता हूँ।
रात बीतने पर, जब सब चले जाते है
दरवाजा बन्द कर
हाथ-पैर फैलाकर सतोष से गुनगुनाता हूँ
इस तरह
रोज बीस लोगो के आगे रोता हूँ
और दस लोगो को प्रभावित करता हूँ।
कभी कभी
दुनिया भर से लडने की टेक ठानता हूँ,
पर और तो और गला भी साथ नही देता।
दर्द उठता है और पैर के अँगूठे से फिर पूरा शरीर चीरता
हुआ—
मस्तिष्क के हर कोने मे फैल जाता है,
आखो के सामने का आलोक
केन्द्र से गिरता है
फिर डाल से छूटे पत्तो की तरह
चारो ओर फैलकर व्यर्थ हो जाता है।
ऐसे मे भला कौन रात को आसावरी
और भोर होते भैरवी गाता है!
दोनो पाँव हथेलियो में लेकर बैठा हूँ—
सिर न जाने कब से रखा हुआ है
बुकसेल्फ की खाली जगह मे।
खेत के किनारे के सूखे कुएँ मे
घूमती रहट के खाली बरतनो की तरह
मैं बीत रहा हूँ,
और बीतते जा रहे हैं मेरे वर्ष।

अस्फुट वार्तालाप केवल मैं सुनता हूँ

रावट सगज से आगे
जहा धनरौल वांध मे कमनाशा का जल
प्रवेश करता है—

जगल और गहरे हो जाते हैं।
कमनाशा का जल वाध मे लाने के लिये
वाधे गये पुस्ते पर से होकर
जगलो मे उतरना—
केवल जगल मे उतरना नही होता
एक आदिम युग मे उतरना भी होता है।
जहाँ एक जाति अभी कल तक
पेडो से गिरे फल और पत्तो पर जीवित थी।
वहाँ के लोग वरसात और वसन्त की रातो मे
अव भी नाचते थे—मयूरो की तरह समूह मे वँधकर

जगल मे घुसने पर एक वाँधमारा
गाँव है—गाँव के पूरव खरवारो की एक वस्ती
वस्ती के एक ओर मगरी है—मगरी मेरी वहन।।

आज से दस वप पहले

मगरी मुझे मिली थी
राबर्ट्सगज के रामलीला मैदान मे
दूर जगलो—गाँवो से चलकर
कितने ही लोग वहाँ एकत्र हुए थे
शून्य आँखो से घूरते हुए युवक, निढाल बूढे।
घबरायी, भूखी स्त्रियाँ
फटे, मैले वस्त्रो से तन ढकती लडकियाँ
उस वर्ष के भयकर सूखे ने
सब कुछ छार कर दिया था।
खेतो मे इस वर्ष केवल आदमी बोये गये थे—
और काटे भी आदमी ही गये थे।
उस भीड मे बँटती खिचडी के लिए
अलमूनियम का टूटा कटोरा फैलाये
पहले पहल मैंने उसे देखा था।
फटे चीथडे मे लिपटी वह लडकी
धूप-ताप से तपकर लाल फिर काली पड गई थी
पर उसकी आँखो का विशाल
ताल तब भी जल विहीन नही हुआ था।
वह डबडब आखो से देख रही थी
चारो ओर भाँय-भाँय चलते उस देश मे
पानी केवल उन्ही दो आँखो मे था।
वाणी कही नही थी
उसके होठो के अस्फुट कपन का अर्थ कौन बाँचे
उसके कटोरे मे दलिया डालते समय
इस देश की प्रधानमत्री भी
कुछ देर तक उसकी ओर देखती चुपचाप खडी रही।

केवल दो वर्ष बाद गणतत्र दिवस समारोह के लिये
नर्तको का दल खोजता मैं जब बाँधमारा गाँव पहुँचा—पर
मैंने भीड मे पहले पहचानी
दो डब डब आँखें

फिर देखा मैंने उसको
तब वह एक नर्तकी थी
करमा नृत्य की नर्तकी
जैसे विशाल ताल पर वसन्त की हवा तैर जाय
प्रलव, सावना, उम्र से दमकता शरीर
काले केश और फिर अगाध जल से भरी दो आँखें
मोरनी की तरह गव से तिरछी
पहचानकर भी न पहचानती हुई मुस्कराती
उसे देखकर मैं
विश्वास नही कर सका कि कभी वह
अलमूनियम का कटोरा लिये भीड़ मे
खोई बैठी भी हुई होगी

तीसरी बार उसे देखा गणतन्त्र दिवस के सवेरे विजय पथ पर
बासन्ती साड़ी पहने उमगकर दौड़ते हुए।
उस दिन वह उल्लास की मूर्ति थी
उस दिन उसके माध्यम से गणतन्त्र का उल्लास
राजपथ पर नाचता हुआ उतर आया
वह एक प्रतीक बन गई थी
अपनी ही राख से जन्मी हुई पावती की तरह।
गणतन्त्र दिवस का उल्लास पूर्ण होने के बाद जाड़े की
सुबह मैं थकान मिटाने बैठा
तभी वह धप से मेरे पास आकर बैठ गई।
एक चुरुट की लालच मे
कभी-कभी ऐसे उसका मेरे पास बैठना अच्छा लगता था
उस दिन भी अच्छा लगा
लेकिन उस दिन उसने चुरुट नहीं माँगी
उसके चेहरे पर उस दिन प्रसन्नता नही थी
उसे इस बात का अन्दाज लग गया था
कि यह सपना जल्दी ही टूटना चाहता है
अलग होने से पहले उसने साहस बटोरकर मुझसे पूछा

बाबू क्या बच्चे दवा-दारू से होते हैं
मैं एकदम चौका—होते हैं—
दवा कहाँ होती है ?
बडे अस्पताल मे—
लम्बी सास खीचकर मगरी चुपचाप हो जाती है
उसका साहस छूट जाता है
उस दिन कही जाकर मुझे पता लगा
कि शादी के इतने वर्ष बाद भी उसे बच्चे नही है
और दिल्ली से लौटने के ठीक बाद
उसका पति उसे छोड देगा
वह केवल नाचने के लिये रह जायगी
उसे केवल नाचते रहना
नाचते रहना है
उसका सारा उत्साह बिखर जाता है
वह केवल एक बध्या सस्कृति की प्रतीक बनकर रह जाती है
मैं उसे आश्वासन दे सकता हूँ—
पर आश्वासन न तो एक चुरुट और न एक सिगरेट
तीसरे दिन तीन मूर्ति भवन मे देश के
लोक नतको के साथ
मगरी खडी है
प्रधानमत्री के लिये मुट्ठी मे एक भेंट लिये
जगलो से चुनकर लायी गई
घुघची और पियार की एक माला
भीग रही थी उसके पसीने से
तभी प्रधानमत्री उसके सामने आई
और आते ही उन्होने उसकी मुट्ठियो मे बँधी
माला की ओर देखा
पसीने से भीगती उस घुघची की माला को
और फिर आग्रह से उसे
गले मे पहन लिया
मैंने भीड-भाड मे भी समय निकालकर

प्रधानमन्त्री से उसके दुख को बताया
वह रावट सगज के आगे ऐसे गाँव से आती है जिसने
वर्षो सूखा, अकाल का ताप सहा है
यह कि यह लडकी रावट् सगज की उस
सूखाग्रस्त लोगो की भीड मे थी
यह कि इसे कोई पुत्र नही है
यह कि अस्पताल होता तो शायद
इसका परिवार टूटने से बच जाता
यह कि इसका जी चाहता है एक मा बनकर रहना
यह कि यह व्यर्थ खो न जाती
हजार-हजार लडकियो की तरह

लाल किले से दिये गये प्रधानमन्त्री के
भाषण मे मैं बार-बार खोजता हूँ
जगलो मे आई उस लडकी के प्रश्न का उत्तर।
विशाल भीड के बीच प्रधानमन्त्री और उस
जगल की लडकी के बीच का अस्फुट वार्तालाप
केवल मैं सुनता हूँ,
केवल मैं!

गीत

तियों के होंठ कब तक
ढ रोकेंगे !
ँ धरा को गगन तन से मिला जाऊँगा

(1)

उमस के बन्धन

दृप्त विजन्नियो की बाँहो मे बाह डाल यदि मैं चल पाता।
मैं तूफानो की हलचल का वाहक वन पाता यदि जा पाता।

शीशे के उस ओर गगन मे,
नाच रही चचला मनोहर
चीख रहे अधड के झाके
धूल भरे बच्चो से आकर
मैं चुप हू पर विद्रोही मन को फिर भी में रोक न पाता

उमस से भर गया यहाँ
ऊपर पखे मथ रहे निरन्तर
भीतर मन के मन्थन की,
गति क्षण-क्षण वढती जाती हर-हर
पत्थर सी पीडा से दवकर मन उड-उडकर कव उड पाता

एक छहर बूदो की पुलकित
पवन भर गया एक लहर सा
आखिर कवका तडप रहा
तूफान खिडकियो पर आ वरसा
खिडकी खोलो कहा, किन्तु मैं मन की खिडकी खोल न पाता

(2)
पहली बूद

यह बादल की पहली बूंद कि यह वर्षा का पहला चुम्बन
स्मृतियो के शीतल झोको मे झुककर काप उठा मेरा मन

बरगद की गम्भीर बाहो से बादल आ आगन पर छाये
झाँक रहा जिनसे मटमैला थका चाँद पत्तियाँ हटाये
नीची ऊँची खपरैलो के पार शान्त वन की गलियो मे
रह-रह कर लाचार पपीहा थकन घोल देता है उन्मन
यह वर्षा का पहला चुम्बन

पिछवारे की बसवारी मे फँसा हवा का हलका अचल
खिच-खिच पडते बास कि रह-रह बज-बज उठते पत्तेअचल
चरनी पर बाँधे बैलो की तडपन बन घण्टिया बज रही
यह उमस से भरी रात यह हाँफ रहा छोटा सा आगन
यह वर्षा का पहला चुम्बन

इसी समय चीरता तमस की लहरें छाया धुँधला कुहरा,
यह वर्षा का प्रथम स्वप्न धँस गया थकन मे मन की, गहरा
गहन घनो की भरी भीड मन मे खुल गये मृदगा के स्वर
एक रुपहली बूद छा गयी बन मन पर सतरगा स्पदन
यह वर्षा का पहला चुम्बन

(3)

अब मत सोचो प्रिय रे, अब मत सोचो
आखो के जल को प्रिय बशी से पोछो
धानो के खेतो सी गीली
मन मे यह जो राह गयी है
उस पर से लौट गये प्रियतम के
पैरो की छाप नयी है
पावो के चिह्नो मे जल जो निथराया
मन का ही दर्द उमड अँखियन मे छाया
आखो मे भर आये उस जल को प्यारे
तुम बशी से पोछो
अब मत सोचो

(4)

पात झरे फिर फिर होंगे हरे
साखू की डाल पर उदासे मन
उन्मन का क्या होगा
पात पात पर अंकित चुम्बन
चुम्बन का क्या होगा
मन मन पर डाल दिये बंधन
क्रंदन का क्या होगा
पात झरे गलियों गलियों बिखरे

कोयलें उदास मगर फिर फिर वे गायेंगी
नये नये चिह्नों से राह भर जायेंगी
खुलने दो कलियों की ठिठुरी ये मुट्ठियां

माथे पर नयी नयी सुबहें मुसकायेंगी
गगन नयन फिर फिर होंगे भरे
पात झरे फिर फिर होंगे हरे

(5)

पर्वत की घाटी का जल चचल
झरने का दूध धवल
एक घडा सिर पर ले
एक उठा हाथ मे
मैं चलती, जल चलता साथ मे
मेरी कच्ची कोमल देह पर
छलक छलक गाता है छल छल छल
जल चचल
झरने का दूध धवल

(6)

मेरे घर के पीछे चन्दन है
लाल चन्दन है

तुम ऊपर टीले के
मैं निचले गाँव की
राहे बन जाती है रे
कड़ियाँ पाँव की
समझो कितना मेरे प्राणों पर बन्धन है!
आ जाना बन्दन है
लाल चन्दन है

(7)

यात्राएँ बीती
पवत की—
मेले बीते

तुमसे जेठी व्याही
व्याही छोटी तुमसे
सबने सज-बजकर व्याह रचे
पाये मनचीते
मेले बीते

पगली बेटी अनमन
घूम फिरी तू रनवन
बीते दिन गिन गिन
आसू पीते

(8)

यह कैसा पेड
लता है किसकी ?
सेंदुर का पेड
लता काजल की

तुम न वताना सवको
तुम न वुलाना सवको
अँगुली दिखाना मत
देखो मुरझाना मत
नजर इसे है विप की

हम दोनो आयेंगे
व्याह किये आयेंगे
सेंदुर से माथा भर
काजल रचायेंगे
भेंट चढायेंगे आँसू-जल की
लता काजल की

(9)

आछी के वन

आछी के वन अगवारे
आछी के वन पिछवारे
आछी के वन पूरव के
आछी के वन पच्छिमवारे
महेका मह मह से रन-वन
आछी के वन

भोर हुई सपने सा टूटा
पथ महँ महँ का पीछे छूटा
अब कचमच धूप
हवाएँ सन सन
आछी के वन

(10)

आधी रात
वाग मे पिडकुल
कुकुर डुकुर स्वर

आधी रात
यहाँ मैं आकुल
तुम आओ घर

(11)

धान के ये फूल
ये आनन्द के उपहार
ये कपासी फूल
तेरे नित्य के शृंगार

सोन रंगी फूल हुन्दी
सी जवानी खिली
जामुनी कोपल सरीखी
देह चांदी मिली
फूल कद्दू के खिले
यह देह लहरायी—
लहलहाती लता सी
लो गदबदा आयी
कहाँ से पा गयी प्रिय
ये अनदिखे सब साज
और पीतल ठनकने
सी खनकती आवाज ?

(12)

कटती फसलो के साथ वट गया सन्नाटा
वजती फसलो के साथ व्याह के ढोल वजे।
मेरे माथे पर झुक झुक आते पीत चन्द्र
तुम इतने सुदर इसके पहिले कभी न थे।

चाँदनी अधिक अलसायी सूनी घडियो मे
वासुरी अधिक भरमायी सूनी गलियो मे।
कितनी उदास हो जाती कनइल की छाया
कितनी वेचैनी है वेले की कलियो मे।

पीले रगो से जगमग तेरी अगनाई।
पीले पत्तो से भरती मेरी अमराई
पवती सरीखी तुम्हे कहू या न भी कहूँ,
हर बार प्रतिध्वनि लौट पास मेरे आयी।

अच्छा ही हुआ कि राहें उलझ गयी मेरी
यदि पास तुम्हारे जाती तो तुम क्या कहते ?

(13)

मेरा बनजारा-मन

है हाथ छुडा ले रहा
आज मुझसे मेरा बनजारा-पन
मुझसे मेरा आवारा पन

पवतो वियावानो के रस्ते अनरस्ते
मेरे महँगे दिन चले गये कितने सस्ते
अब ये प्रकाश के बिम्ब सुहाने चौरस्ते
मेले है लगते यहाँ
किन्तु लगता है नही अभागा मन
मुझसे मेरा बनजारा-पन

अब बोल न होगे ये
वशी के अनुगूंजन
तडपन बनेगी व्याकुल
हर मन की धडकन
लो पास सिमट आये
ये दिशि दिशि से बधन
दूर की पुकारो के पीछे पागल होकर
अब मन न करेगा अनुधावन
मुझसे मेरा बनजारा-पन

(14)

नीर जामुनी याद तुम्हारी, खनकी कगन बोल सी
बहुत दिनो के बाद जगलो की सुधि मुझमे बोलती

चांद पूर्णिमा का झुक आता जब धरती की बाँह मे
झिलमिल राह तुम्हारी हो जाती तारो की छाँह मे
तब तुम मन का दद वशियो की गाठो मे खोलती
खनकी कगन बोल सी

दुपहरिया उदास हो जाती पिडकुल के स्वर हो थके
झरते जब वन-वन के पत्ते पछुवा के सकेत से
तब तुम अनमन सी छन बाहर, छन भीतर हो डोलती
खनकी कगन बोल सी

गहरे तीर उतर पानी मे चाँदी डूबी रात मे
तुम मेरे सदेश थामती हो लहरो के हाथ से
लाल चमेली पानी मे मेहदी के नवरग घोलती
खनकी कगन बोल सी

(15)

शीशे के नगर मे

नगर मे आ गये
शीशे के नगर मे।
लगे शीशे गली मे
हर मोड पर
हर घर-डगर मे।
देखते हो, देखते ही रहो
कहो सब कुछ कहो
कुछ मत कहो
सहो, केवल सहो, सहते रहो,
आ गये तो चुप रहो, बैठो
न घोलो मधु जहर मे।
नगर मे आ गये
शीशे के नगर मे।

छवि कही होगी
वहाँ उस पार होगी
बीच मे केवल
खुली दीवार होगी
एक क्या
सौ द्वार क्या

हर द्वार होगी
खेल चलता रहे, ऐसा करो कुछ
बैठो न घर मे।
नगर मे आ गये
शीशे के नगर मे।

सास उच्छवासा भरे मन
भरे ही रह गये
प्राण तडपे, उम्र भर
वस तडपते रह गये
दपणो की पर्त
आलिगन दबे रह गये
सब भरे बैठे रह, रह जाय
इस खाली प्रहर मे।
नगर में आ गये
शीशे के नगर में।

(16)

गीत वैसे ही हरे थे
गगन वैसे ही भरे थे,
हमी बीत गये।

जागते दिन सो रही रातें
बहुत बातें, फिर बहुत बातें
भरे मन, आंसू
भरे ही रहे।
हमी रीत गये।
नही कुछ वापस नही होता
प्यार, पछतावा, न समझौता
प्यार के दिन—
हार के दिन थे
हमी जीत गये।

रास्ते लम्बे मगर चुप रहे।
कहा सब कुछ, रहे पर अनकहे।
हमी आंसू थे, हमी चुप्पी
हमी गीत रहे
हमी बीत गये।

(17)

फूल से सजाओ
मुझको
फूल से सजाओ
माथे पर फूल धरो मेरे मा
वलि वलि सजाओ
मा मुझे सजाओ
शाल के सुहाने फूल
अग अग फूले
मेरी यह देह शाल—
वन सी
माँ झूमे
फूलो सी मुझे
देवचौरे पर आओ
वावा घर आओ
माँ मुझे सजाओ

(18)

नगर चुप है

ागर चुप हैं
जगलो मे गुनगुनाहट है
मुझे जगल पुकारे तो
चला जाऊँगा।
रात रुक-रुककर चलेगी
चलेगी ही तो
आग वन-वन मे जलेगी
जलेगी ही तो
चला जाऊँगा भले ही छला जाऊगा।
नगर चुप हैं।

बस्तियो तक आ गये
बस झूमते वन है
बरसने के पूव जैसे
झुक गये घन है।
पत्तियो के होठ कब तक
भेद रोकेंगे।
मैं धरा को गगन तन से मिला जाऊँगा
नगर चुप हे।

(19)

वन मन मे

वन मन मे
मन वन मे
गये और खो गये

द्वार बनेंगे झूले
ताल बनेंगे आगन
कुचले फन सा तन मन
वीन बजाता फागुन
हम पतझर के थे
अब फागुन के हो गये

वन मन मे
मन वन मे
गये और खो गये ।

□□

ठाकुरप्रसाद सिंह

जन्म 1 दिसंबर 1924 को वाराणसी (उ० प्र०)

महात्मा गांधी पर रचित प्रथम व्यवस्थित प्रबंध काव्य 'महामानव' (1946 मराठी, गुजराती, में भी अनूदित) 1950 में देवघर, हिंदी विद्यापीठ के प्रधान। संथाल परगना में आदिवासियों के संपर्क में लोकगीतों के प्रभाव में नये गीत लिखे जो 1959 में पहली बार 'वंशी और मादल' नाम से प्रकाशित हुए इसमें नये गीतों की जो परंपरा शुरू हुई वह आज 'नवगीत' के रूप में प्रमुख कविताधारा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। 'हारी हुई लड़ाई लड़ते हुए' उनका नवीनतम कविता-संग्रह है। जिसमें उनकी प्रमुख विचारकविताएँ पहली बार एक साथ प्रकाशित हो रही हैं। कुछ प्रमुख गीत तथा प्रारंभिक अप्रकाशित रचनाएँ सम्मिलित कर एक प्रतिनिधि संकलन रूप में प्रस्तुत हैं।

कुब्जा सुंदरी आदिम, सात घरों का गाँव (उपन्यास) चौथी पीढ़ी (कथा-संग्रह), पुनर्दर्शन (संस्मरण रिपोर्ताज निबंध), नये घर पुराने लोग (निबंध) बाबूराव विष्णु पराड़कर (चरित चर्चा) आदि ग्रंथों सहित लगभग तीस कृतियों के रचनाकार।

लम्बे बरसों तक उत्तर प्रदेश शासन के महत्वपूर्ण पदों पर कार्य करने के उपरान्त मुक्त हुए तथा नये विश्वास से रचनारत श्री ठाकुरप्रसाद सिंह रचना के एक बिलकुल नये और ताजे माहौल में पुनः अवतरित।

निवास क 67/120, इन्दिरानगरी, वाराणसी-1